समझने का सही तरीका

ओम तत्सदात्मने नमः

सरिता जल जलनिधि महुं जाई ।

होई अचल जिमि जिउ हरि पाई ।।

ऐसे जब समस्त बाधाओं को पार करता हुआ साधक का मन स्वरूप में समाहित हो जाय, तब यह मानस का परिणाम आता है। तो साधना शुरू करने के पहले की, और फिर साधना करते समय की, और परिणाम आने की अवस्थाओं में अन्तर आता है।

पहले ये रावण वगैरह पैदा हो जाते हैं। इस शरीर में आशक्तिरूपी लंका में उन्हीं का राज्य रहता है। तीनों लोकों में अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों में आतंक मचाए रहते हैं। अच्छे कर्म होने नहीं देते–

'जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा ।

आपुन उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा ।।

अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिय नहिं काना ।

तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना।।

इस तरह से पहले मन इन काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों से ग्रसित रहता है, अशान्त रहता है। फिर जब साधन भजन का संयोग बना, तब इसी शरीर को अवध कहते हैं। फिर इसी अवध में वही मन रूपांतरित होकर दशरथ के रूप में आ जायगा। फिर भक्तिरूपी कौशिल्या आ जायगी, सुमति सुमित्रा मिल जायगी। राम–लक्ष्मण आदि के रूप में ज्ञान–विवेक ये सब आ जायेगें। पहले जो काम क्रोध, लोभ मोह, आदि राक्षस पैदा हो गये हैं,उनको मारने मिटाने के लिए ये सदगुण आ जाते हैं– अंतःकरण में। फिर आगे कैसे क्या होता है, यह सब मानस की कथा लिखी है गोस्वामी जी ने। तो जिस तरह से मानस बना है, जहाँ यह भरा जाता है और जहाँ से यह कथा प्रवाहित होती है और जहाँ इसका अवसान होता है, हमारा हृदय है वह स्थान। दूसरी जगह इसके लिए कहीं और नहीं है। हमारा अंतःकरण ही वह स्थान है। इसे समझना पड़ेगा तब सही तरीका पकड़ मे आ जायेगा। और नहीं तो प्रसंग आ गया कि दशरथ के घर राम पैदा हुए, तो मन चला गया वहाँ बनारस के आगे पहुंच गया अयोध्या। ऐसा ठीक नहीं। हम कोई भी प्रसंग पढ़ें या सुनें, मन

हमारा इधर अपने अन्दर उसेले। बाहर न भागे। बाहर के चित्र मन मे न आयें। ऐसी शैली बन जाय सुनते –सुनते, तो फिर तरीका मिल जाता है।

अब एक बात और है, कि साधना मे साधक अपना शरीर, इन्द्रियां, मन बुद्धि, लगाकर मेहनत करके आगे बढता है। यह तो ठीक है, लेकिन गोस्वामी जी जगह–जगह लिख देते हैं कि राम की कृपा से यह सब हो जाता है–

जासु कृपा बल सुनहु भवानी।
भव बंधन काटहिं मुनि ज्ञानी।।

अथवा

'राम कृपा नासहिं भव रोगा।'

इस तरह यह सब कृपा से होता है। तो इससे जो भजन करने वाला है, उसे अपने पुरुषार्थ का कोई मतलब समझ में नहीं आता। लोग कृपा के आसरे बैठ जाते हैं। तो तुम्हारे पास साधन भजन, अनुराग वैराग आदि तो करने को हैं, लेकिन कृपा कैसे कहाँ से मिले, यह प्रश्न आ जाता है। तो यहाँ कृपा का अर्थ है, पूर्वजन्म के अच्छे संस्कार अथवा पूर्व के पुण्य। देखिए, लिखा है कि,

बिनुहरिकृपामिलहिं नहिं संता।

और फिर लिखा है कि–

पुण्य पुंज बिनुमिलहिं न संता।

पुण्य और हरिकृपा दोनों समान परिणाम देते हैं– संत से मिला देते हैं। इस प्रकार पूर्वपुण्य और हरिकृपा एक ही बात है। जो साधन–भजन, अच्छे कर्म पूर्व में किए हैं, वही हमारे प्रारब्ध के रूप में हरिकृपा, बनकर हमें मिल जाते हैं। अगर पूर्वपुण्य नहीं हैं, तो साधन में प्रवेश नहीं होता। नियम यह है, कि एक तिहाई पूर्व के पुण्य हों, एक तिहाई साधक का पुरुषार्थ हो, और एक तिहाई गुरु की कृपा। पुण्य संस्कारों से ही भजन की ओर उन्मुखता बनती है। फिर साधना में परिश्रम करें और इसमें गुरु की मदद भी निहायत जरूरी है। ये तीनो बातें बराबर महत्व रखती हैं। तो जो साधक के करने की बात है, वह मूलतः यह है, कि वह अपने मन को भगवान में लगाये। किसी संत सद्गुरु की शरण पकड़ ले।

गोस्वामी जी की रामायण का जो उपक्रम है, उसमें यह प्रश्न उठाया गया है कि दशरथ का लड़का जो राम है वह ब्रह्म कैसे हो सकता है? कोई मनुष्य होगा तो उसे प्रकृति के अन्तर्गत रहकर सारे क्रिया कलाप करने होंगे, और जो परब्रह्म है वह

प्रकृति से परे होता है। तो यह कैसे सम्भव है? यही प्रश्न पार्वती जी ने शंकर जी से किया,

जौ नृप तनय तौ ब्रह्म किमि,

यही प्रश्न गरुड़ ने कागभुसुण्डि से किया, यही बात भरद्वाज ने याज्ञवल्क्य से पूछी,

कीसोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।

तो यह झगड़ा गोस्वामी जी ने हम सब के सामने खड़ा किया, और वक्ताओं के द्वारा सिद्ध किया है कि दशरथ का पुत्र राम परब्रह्म ही है–

जेहि इमिगावहि वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दशरथ सुत भगत हित, कोशल पति भगवान।।

वह दशरथ सतु भी है, भगवान भी है। अब यदि एक आदमी के साथ यह बात सिद्ध होती है, तो यह नजीर सब पर लागू होनी चाहिए। इसलिए सीधी सी बात है कि ब्रह्म तो आत्मा के रूप में सब के अन्दर बैठा ही है। जगह–जगह लिखा है– सब उरपुर वासी, सब उर अंर्तयामी। सब में है वह परमात्मा। यही सिद्ध करना चाहते हैं गोस्वामी जी। यही तो मूल दर्शन है। गीता में भी आया है–

ईश्वरः सर्वभूतानाम् हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

वेद, शास्त्र सब यह बताते हैं कि – वह परमात्मा सबके हृदय में रहता है। लेकिन आदमी रामायण–गीता,कुरान–पुरान की बात मानता नहीं। वह तो भगवान को मन्दिर में,मस्जिद में,त्रेता में,द्वापर में ढूंढ रहा है,बाहर–बाहर। अपनी ओर मुड़कर देखता ही नहीं।

देखिए लिखा है–

सो अनन्य जाके असि, मति न टरै हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत ।।

चराचर जगत भगवान का रूप है, तो फिर यह 'मै' कहाँ से अलग रह गया? सचराचर में तो मै भी आ जाता है। लेकिन यह मै अन्त तक अलग ही खड़ा रहता है। इसी मै को उसमें मर्ज करने (मिला देने) के लिए साधना बनी है। क्योंकि–

तुलसिदास मै मोर गये बिनु,जिव सुख कबहुं न पावै।

साधना की पूर्णता में मै उसी मे समाहित हो जाता है। वही हो जाता है। इस तरह से यह करने मे जटिल विषय है। वेदांत सीधे कह देता है-

सर्वम्खलुइदम् ब्रह्म। अहं ब्रह्मास्मि।

लेकिन कहने भर से यह होता नहीं। वेदांत में भी निदिध्यासन की सात भूमिकाएं कही गयी हैं। शुभेच्छा, सुविचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, असंसक्ति,पदार्थ अभावनी, तुर्यगा। इनको पूरा कर लेने पर साधना पूरी हो जाती है। यही सात भूमिकाएं, मानस के सात काण्ड हैं। भजन की पूर्णता के लिए ये सात सीढ़ियां हैं।

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना ।
ज्ञान नयन निरखत मन माना।।

अथवा,

यहि मह रुचिर सप्त सोपाना ।
रघुवर भगति केर पंथाना ।।

भक्ति के मार्ग में सीढ़ी दर सीढ़ी आगे बढ़ना है और लक्ष्य तक पहुंचना है। इसलिए मानस को मानसिक भजन की प्रक्रिया में लेना पड़ेगा। इसमे सब तरीका बताया गया है। उसके अनुसार चले, तो जीवात्मा आत्मकल्याण कर सकता है।

अब जब भजन की बात आयेगी तो हम अपना विश्लेषण करेगें। देखेंगे कि हम यह शरीर हैं। यह स्थूल शरीर है। और गहराई में जायेंगे तो पायेंगे कि इसके अन्दर कर्मेन्द्रियां, ज्ञानेन्द्रियां हैं, मन है, बुद्धि है, चित्त है। ये सारे अवयव जिसमें काम करते हैं, वह हमारा सूक्ष्म शरीर है। इसमें एक तरफ सदगुण हैं, तो वहीं दुर्गुण भी भरे हैं। इस सूक्ष्म शरीर का संचालन जहां से होता है, वह कारण शरीर कहा जाता है-जीवात्मा। वही इन दुर्गुणों-सदगुणों को ताकत देता है, और इनके बीच धक्के खाता रहता है। अच्छे गुरु के सम्पर्क में आने पर ये बातें दिल दिमाग में बैठ जाती हैं। तब फिर आगे भजन की रूपरेखा बनती है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण, तीनों शरीरों की गतिविधि का ज्ञान करके जिन ऋषियों मुनियों ने, योगियों ने साधना करके अपने स्वरुप को जाना है, उन्होंने इस विषय की जानकारी अपने-अपने ढ़ंग से कराई है। समाज को समाज के तौर तरीकों से समझाया है। जिससे संसारी आदमी, जो बाहरी स्थूल जगत को जानता समझता है, वह भी इसमें रुचि लेकर भजन के मार्ग में लगे। भजन का प्रारम्भ स्थूल स्तर से ही होता है।

मानस के अनुसार स्थूल स्तर की दक्षता या जानकारी को दक्ष कहते हैं। उससे भजन की प्रशक्ति रूपी सती पैदा हुई। शुरू में साधक स्थूल स्तर पर जानकारी प्राप्त करके भजन की ओर लगता है। स्थूल के अधिष्ठाता शंकर हैं। सत्यरूपी शंकर में वह भजन की प्रशक्ति जुड़ गयी। इस तरह से सती शंकर की स्त्री है। और फिर जब गहरी जानकारी रूप यज्ञ में उसका ट्रांसफार्म (रूपांतरण) हो गया, तो हृदय रूपी हिमालय में, प्रेमाभक्ति स्वरूप पार्वती बनकर आ गयी–

सती मरत हरि सन वरु मांगा।
जनम जनम शिव पद अनुरागा।।
तेहि कारण हिमगिरि गृह जाई।
जनमी पारवती तनु पाई।

साधक के अन्दर ईश्वर के प्रति गहरा प्रेम ही पार्वती है। इसलिए सत्यस्वरूप शंकर से विवाह हो गया। पूरी निष्ठा ईश्वर में हो गई। अब आगे सूक्ष्मस्तर की साधना में प्रवेश हो जायगा। इस तरह से सूक्ष्मसाधना की गतिविधि तैयार हो जायगी। क्रिया में आ जायगी, आगे चलती जायगी और साधक सजातीय तत्वों से सम्पन्न हो जायगा। सजातियों का समूह अर्थात राम का दल, जब रावण दल को काम–क्रोध आदि को – खतम कर देगा, तब यह जीवरूपी विभीषण राजा हो जायगा। ऐसे यह मानस की कथा चलती है, साधक के अंतःकरण में।

संत कबीर कहते हैं –

बिन अधार का महल बनावै,
बिना भूमि की सेज बिछावै।
कोई पण्डित ज्ञानी।
प्यास बुझावै बिन पानी।

इस तरह ये साधन क्षेत्र की बातें हैं, उल्टी–पुल्टी कह दी गयी हैं, सब लोग समझ नहीं पाते। क्योंकि सूक्ष्मस्तर से सम्बधित अभ्यास अभी है नहीं। पदार्थ जगत में रमण करने वाली बुद्धि से, लोग, परमात्मा को भी घसीट कर इसी धरातल पर खड़ाकर देते हैं। जैसे संसार में लोग माता–पिता से पैदा होते हैं, ऐसे ही भगवान की पैदाइश दिखाते हैं। वैसे ही बालअवस्था, युवाअवस्था, खेलना, पढ़ना, विवाह, रोना, गाना और मरना जीना भी भगवान का सब करते हैं। उस अलौकिक को लौकिक रूप में ले लेते हैं। इससे बहुत बड़ी गफलत में पड़ जाता है आदमी। जैसे दुनियावी आदान–प्रदान या लेन देन होते हैं, वैसे ही लोग यह मानते हैं कि भगवान हमें सब

कुछ देता है। सुख दे देगा, संपत्ति दे देगा, यह दे देगा, वह दे देगा। लेकिन किसी को देते हुए देखा तो नहीं गया उसे आंखों से आजतक,कि यह दे रहा है भगवान। अगर मान लिया जाय कि किसी को दिया उसने धन–दौलत,तो क्या वह सब धन दौलत रहा उसके पास? वह पानेवाला ही चला जाता है, सब यहीं रह जाता है। इसलिए दुनिया का तरीका है कि यहां सबको दुखी होना पड़ता है, सबको सुखी होना पड़ता है। सबको रोना पड़ता है सबको हंसना पड़ता है। सबको जीना पड़ता है, सबको मरना पड़ता है। चाहे राम हों चाहे कृष्णा, कौन ऐसा है जिसे दुख न मिला हो? राम को भी दुख उठाना पड़ा। वनवास का दुख, पितामरण का दुख, सीताहरण का दुख, भाई लक्ष्मण के शक्तिबाण लगने का दुख–अनेक दुख मिले। इतना ही नहीं, जब अयोध्या आ गये, तो लोकनिन्दा में फंस गये। गर्भवती स्त्री को घर से निकालना पड़ा। अब बताइए कहां तो रामराज्य का सुख और, कहां यह पहाड़ जैसा दुख। राम तो मर गये जिन्दगी भर रोते–रोते, फिर राम को राजा कहते हैं। राजा वास्तव में संन्यासी को कहते हैं। राम ने सुख –दुख,संपत्ति–विपत्ति सबमें संन्यासी की तरह से सम दृष्टि रखी और जीवन का आदर्श दुनिया के सामने रखा। गोस्वामी जी कहते हैं कि राम न तो राज्याभिषेक का समाचार पाकर खुश हुए और न वनवास की बात सुनकर उदास हुए।

प्रसन्नातां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।

ऐसी निर्लेप और समत्व की स्थिति महात्माओं की होती है। इस तरह राम महापरुष थे। आज भी लोग उनका नाम लेते हैं। वास्तव में संन्यासी ही सम्राट है, जो अपने मनोविकारों पर, वासनाओं पर, इन्द्रियों और अतःकरण पर काबू पा लेता है और निर्लेप भाव से संसार में रहता है। न उसको धन से लोभ है, न किसी में आसक्ति है, न सुख की चाह और न दुख की परवाह है। उसे अपने शरीर से, कपड़े से, भोजन से, किसी से आसक्ति नहीं रहती। ऐसा जीवन था राम का। इसलिए उन्हे धर्मात्मा राम, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, भगवान राम और राजा राम कहना ठीक ही है।यदि उसे लौकिक रूप में लेना है तो। वैसे राम तो अलौकिक है – आत्मा है सबका।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि भवानी।।

और लौकिक तरीके से तो स्तुति भी होगी – निंदा भी होगी। देखो वाल्मीकि के आश्रम में, लव और कुश के द्वारा राम के धर्मात्मापने पर ही आक्षेप किया गया, कि यह कैसा धर्मात्मा राम है जो इस तरह से निर्दोष गर्भवती स्त्री को अकेली जंगल में

छोड़ दिया- यह कैसा धर्म है? आज भी बड़े-बड़े विद्वानपरेशान हैं इस प्रसंग को लेकर, लेकिन समाधान नहीं कर पाते। समाधान तो तब मिले, जब वह स्थिति अपने में आवे। और यह तो उस योगी (वाल्मीकि) के अन्दर की बात है, जो साधना करके क्षमता रूपी सीता को प्राप्त करता है और, फिर उस क्षमता का भी त्याग कर देता है। त्याग का त्याग करके निर्लेप हो जाता है। सीता के निर्वासन को बाहर से लेंगे तो कोई इसे सही कहेगा, कोई गलत कहेगा। कहते हैं कि बाल्मीकि ने राम के पैदा होने के पहले ही रामायण लिख लिया था, तो इसका क्या मतलब लिया जायेगा?

हाँ, तो यह राम गोस्वामी जी के मानस का राम है। उनका अपना राम है। बाल्मीकि का राम थोड़ा अलग ढ़ग का होगा,कबीर का अलग होगा। ऐसे काया करके भेद हो जाता है-

कलप भेद हरिचरित सुहाए।
भांति अनेक मुनीसन्ह गाए।।

कलप भेद मतलब, काया भेद से।

इसलिए जिसे भजन करना है, साधना के रास्ते पर चलना है, उसे राम के चरित मानस में लेना चाहिए। अपने मन के अन्दर इनकी एडजेस्टिंग कर लेना चाहिए,तब ठीक रहता है।

गोस्वामी जी की यह रचना ऐसी है, कि इसमें बाहरी जो घटनायें आई हैं,उनकी संरचना बड़ी ठोसरूप में की गयी है। सांगोपांग चित्रण हुआ है, हर प्रसंग का-अच्छी नाटकीय शैली में, सुन्दर कविताई में। और उसमें अध्यात्म को केवल दस पैसा लिया गया है, सांकेतिक तरीके से। इसलिए समाज के लिए यह रोचक बन गया है। अधिकांश जनता जो संसारी तौर तरीके ही समझती है, उसे इसमें रुचि आती है। आध्यात्मिक बातें बारीक होती हैं। उन्हे समझने के लिए बारीक बुद्धि और सजातीय संस्कार चाहिए। सबकी पकड़ में ये बातें नहीं आती हैं। जैसे प्राइमरी का लड़का एम. ए. का कोर्स नहीं पढ़ सकता ऐसे ही इसमें भी श्रेणी का अन्तर पड़ता है। सामान्यतया तो आदमी सोचता है, कि हम इसीतरह गृहस्थी में-लड़का, नाती, स्त्री के बीच में- मजे से रहें, और महात्मा जी के आशीर्वाद से कोई तकलीफ न आये। खूब धन दौलत हो जाय, मकान गाड़ी घोड़ा हो जाय, तो फिर महात्मा जी को हम पसंद करेंगे। उधर रामायण- गीता भी खूब पढ़ते सुनते हैं। उसमें तो लिखा है कि यह सब धन दौलत, स्त्री पुत्र किसी का कोई नहीं होता। लेकिन यह बात कोई समझना नहीं चाहता। इसलिए यह सब माया का चक्कर बड़ा बुरा है, संसार में। अनादिकाल से

इसीतरह यह संसार चल रहा है। कभी कोई निकलने वाला हुआ तो वह निकल भी रहा है, भजन के रास्ते पर। संसार अपनी रफ्तार से चलता जा रहा है। इसलिए यह पर्शनल विषय है, साधना का।

हाँ, तो जब सती के रूप में रही तब भी शंकर जी की स्त्री थी, और जब पार्वती के रूप में आयी तब भी शंकर की स्त्री रही। इसका मतलब है कि जब हम स्थूल की साधना–यम, नियम, मौन, देशकाल, पूजा आरती–करते हैं, तब भी भगवान की भक्ति करते हैं। और जब सूक्ष्म की साधना करते हैं, तब भी भक्ति ही करते हैं। शुरू की साधना में साधक अपनी समझ के अनुसार, जो कुछ पूजा अर्चना बनती है, करता है। सतसंग में जाता है, महात्माओं के पास जाता है, जो समझ पाया वह नियम संयम भी करनेलगता है। वाणी से नाम जपने लगा। फिर धीरे–धीरे भगवान में प्रेम प्रगाढ हो गया, तो आगे बढ़ जाता है। आगे की साधना करने लगता है। जैसे यहाँ है, पहले ब्रह्मचारी बनाते हैं, फिर नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनाते हैं, फिर संन्यास दे देते हैं। ऐसे ही वेदांत में भी एक–एक सीढ़ी आगे बढ़ते हैं–सुभेच्छा, सुविचारणा आदि। हमारे यहाँ भक्ति और योग मिश्रित ज्ञान है, और वेदांत में खाली ज्ञान है। सबकी अपनी–अपनी मान्यताएं हैं। इन बातों से परमात्मा में कोई फर्क नहीं पड़ता, वह तो अपनी जगह ज्यों का त्यों है। हम उसे मानें तो भी है, न मानें तो भी है। उसे प्राप्त कर लें तो भी है, न प्राप्त कर पावें तो भी है। यह उतार–चढ़ाव और भेद–भाव तो आदमी की रुचि के आधार पर साधना के तौर तरीकों में आता रहता है। सीधा सा तरीका है कि हमारे ऋषियों मुनियों ने जिस ढंग से उसे पाया है, वही ढंग हम भी अपनावें। अपनी परम्परा को पकड़कर चलना ठीक रहता है। मन में वैसे संस्कार रहते हैं। उनसे मदद मिल जाती है गीता में कहा गया है–

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

हमारे ऋषियों मुनियों ने उपनिषदों में, अपने–अपने ग्रंथों में लिख दिया है, कि कैसे उन्होंने ईश्वर को पाया है। उन्होंने आत्मानुभूति या सेल्फरिएलाइजेशन कहा है, ईश्वर की प्राप्ति को। अब तुम भी वह तरीका अपनाओ। जो नट बोल्ट जहाँ का है वहां कस दो, सही एडजेस्टिंग कर लो अपने अन्दर, तो ठीक रास्ता मिल जाए। रास्ता तो मिल गया, अब बिना चले मंजिल तो मिलेगी नहीं। चलकर पहुंचो वहां तक। और फिर तुम भी अपनी रिसर्च (शोध) को लिखो, अपनी थिसिस (शोधग्रंथ) जैसे पहले वालों ने लिखी है। हाँ उनकी थिसिसों से तुम मदद ले सकते हो। लेकिन पी.एच.डी. की डिग्री (उपाधि) पाने के लिए तुम्हें खुद अपनी रिसर्च करनी पड़ेगी।

तो साधना के प्रारम्भ में स्थूलस्तर की जानकारी रहती है, वह दक्ष है। उस स्तर पर जो श्रद्धा भक्ति रहती है ईश्वर के प्रति, वह सती है। और सत्य जो अविनाशी तत्व है, वह शंकर है। तो वहां भी वह भक्ति, उसी सत्य के साथ जुड़ती है, और जब कुछ आगे बढ़ गये अन्तर्जगत की ओर, तो वह स्थूल की श्रद्धा भक्ति हृदय में आ गयी – वहां खतम होकर हृदय में आ गयी। वह सती अब गहरी जानकारी रूपी यज्ञ में खतम होकर, हृदय रूपी हिमालय में, प्रेमरूपी पार्वती बनकर आ गयी। मैना अर्थात माया से विमुखता आई, उससे साधक के अन्दर ईश्वर में गहरा प्रेम हुआ, यह प्रेम ही पार्वती है। वही चीज है, जो पहले साधारण प्रेम था वह अब गहरा हो गया। पार्वती भी शंकर का वरण करती है। उसी सत्य के प्रति जो प्रेम है, भक्ति है, वह अब गहरी होकर उसमें लग गयी। फिर जब और सूक्ष्म साधना होगी तो दूसरा रूप बन जायगा। शुभेच्छा, सुविचारणा से आगे तनुमानसा में पहुंच जायगा। जैसे प्राइमरी पास कर लेता है लड़का, तो जूनियर में, और फिर हायर सेकेंडरी में पहुंच जाता है। ऐसे यह साधना, सीढ़ी दर सीढ़ी आगे बढ़ती जाती है। शंकर जो अविनाशी सत्य तत्व है, वह तो वही रहेगा। उसके प्रति जो हमारी भक्ति–शक्ति है, उसमें बारीकी आती जाती है। लगन बढ़ती जाती है। ऐसे समझकर चलो तो ठीक रहेगा। और नहीं तो गाते रहो रामायण और वैसे के वैसे रह गये। इसे क्रिया में लेना पड़ेगा, अपने में लेना पड़ेगा। और अगर बाहर की बातें लेंगे, तो हिमालय तो पहाड़ है और मैना उसकी स्त्री, तो यह बात तो समझ में आने वाली है नहीं। अगर बाहर से लेंगे कि राम त्रेता में पैदा हुए थे और आज नही हैं, तोऐसा राम तो है नही। राम तो सत्य सनातन है। देश,काल से अबाधित है। शुद्ध है, बुद्ध है, अलख है, अविनाशी है। वह पहले भी था, अब भी है, आगे भी रहेगा। वह सदा एक रस परिपूर्ण है, यह तो जो उसे जब प्राप्त कर ले । पहले जीवकोटि के संस्कार मिटें, फिर साधना करते करते जीवकोटि से हायर (उच्चतर) कोटि में आयेगा, तब फिर आगे सुप्रीम (उच्चतम) कोटि में उसे पा जायगा। इस तरह से कैसे बदलाव होता जाता है, यह सब प्रैक्टिकल (क्रियात्मक) विषय है। थ्योरी (मौखिक) में बताने से समझ में नहीं आता। हाँ, प्रैक्टिकल कैसे किया जाय, कैसे हम एडजेस्टिंग करें, यह सब तरीके गुरु लोग– जिन्होंने किया है, करके उसे पाया है–वह बता सकते हैं। कैसे–कैसे, क्या–क्या करना है,उसका अपना तरीका है। ऐसे बताने मात्र से वह तरीका पकड़ में नहीं आता। करना पड़ता है, प्रकृति के सरकुलेशन (चक्र) से बाहर होना पड़ता है, तब वह स्थिति मिलती है। जीवात्मा तो दो की इस चक्की में पिस रहा है। इस माया से उबर पाना आसान नहीं है, लोहे के चने चबाना है। सरल काम नहीं है यह साधना का–

रघुपति-भगति करत कठिनाई।

कहत सुगम करनी अपार, जानै सोइ जेहि बनि आई।।

इस संसार रूपी जाल से निकलने का एक उपाय निकाला है, एक रास्ता बनाया है, हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि महापुरुषों ने। गोस्वामी जी कहते हैं-

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई।

तेहिमग चलत सुगम मोहि भाई।।

उसी रास्ते पर चलने में भलाई है। नया रास्ता बनाना कठिन है, नहीं बना पायेंगे। उसी रास्ते को पकड़ लिया जाय तो मंजिल मिल जायगी, चलते-चलते। नहीं तो इस दुनिया के सरकुलेशन में डूबते उतराते रहो। इससे निकल पाना कठिन है। इसकी युक्ति केवल महात्मा जानते हैं। सद्गुरुओं के पास वह युक्ति मिलती है। इसीलिए राम हो चाहे कृष्ण हो, महात्माओं के सामने हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। मानस में कहा गया है,

राम ते अधिक राम कर दासा।

स्वयं भगवान कहते हैं-

मो ते अधिक संत कर लेखा।

श्रीमदभागवत में एक जगह लिखा मिलता है, कि भगवान महात्माओं की चरण-रज अपने सिर पर धारण करने के लिए उनके पीछे-पीछे घूमा करते हैं। तो संतों के पास इसकी कुंजी रहती है - इसलिए।

इस प्रकार महात्माओं के द्वारा जो सुना समझा था,करके देखा था, वही मुक्ति का उपाय, गोस्वामी जी ने मानस में लिख दिया है-

जो कछु संतन सन सुनेउं,

तुमहिं सुनावउं सोइ।

उस उपाय को, उस रास्ते को, उस असल बात को तो लोग पकडते नहीं, ऊपर-ऊपर इस कथासरिता की लहरें देख रहे हैं। इसमें मज्जन करना पड़ेगा, गहराई में जाना पड़ेगा। हृदयंगम करना पड़ेगा, तब काम बनेगा।

सादर मज्जन पान किये ते।

मिटहिं पाप परिताप हिये ते।।

0 0 0

काम क्रोध मद मोह नसावनि।

विमल विवेक विराग बढ़ावनि।।

हृदय में परिणाम आता है, बाहर नहीं। ऐसी यह रामकथा, कल्याण के लिए है मंगल की मूल है–

मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसीकथा रघुनाथ की।

लेकिन अवगाहन तो करना पड़ेगा। गहराई में जाना पड़ेगा। यह केवल कहानी नहीं है, यह तो चित्तरूपी चित्रकूट में प्रवाहित होने वाली मंदाकिनी है,

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चितचारु।
तुलसी सुभग सनेहवन सियरघुवीर विहारु।।

तो जब हम चित्रकूट पहुँचें–मानस में प्रवेश करें, तब इस मंदाकिनी में अवगाहन हो और तब कुछ बात बने। भगवान बाहर किसी जंगल में नहीं मिलेंगे। जिस किसी साधक का चित्त कूटस्थ हो जाय,निर्मल हो जाय और अनुराग पूरित हो जाय, उसको उसके उस चित्तरूपी चित्रकूट में ही दर्शन देते हैं। कहा जाता है कि गोस्वामी जी को चित्रकूट में भगवान के दर्शन हुए थे, तो समझ लो भगवान अपने में ही मिलते हैं।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मै जाना।।

प्रेम तो हृदय की चीज है। इसलिए यदि किसी के अन्दर भगवान के लिए तीव्र अनुराग आ जाय तो उसके हृदय में भगवान का प्रादुर्भाव हो जायेगा। ऐसे ये तरीके की बातें बीच–बीच में मिलती जाती हैं सूत्ररूप में। और जो यह कथा कहानी लम्बी–चौड़ी है, यह तो इन्हीं बातों तक हमें तुम्हे पहुँचाने के लिए बनायी गयी है। इसलिए इसका भी महत्व है। लेकिन यदि करने की बातों को हम पकडते नहीं, पकड़कर उन पर चलते नहीं, बस पढ़ते जा रहे हैं, सुनते जा रहे हैं, तो यह तो कथा का दुरुपयोग है।

इसलिए यह साधकों के लिए है, मुमुक्षु जनों के लिए है। मनोरंजन के लिए नहीं है यह रामायण।

भव सागर चह पार जो पावा।
राम कथा ता कहं दृढ़ नावा।।

भव सागर से पार होने के लिए नौका तो है यह कथा, लेकिन इसमें आरूढ़ होना पड़ेगा, इसे लेकर चलना पड़ेगा। इसलिए सही रास्ता पकड़ो–भजन करो,

उमा कहउं मै अनुभव अपना।

सत हरि भजन जगत सब सपना।।

0 0 0

देह धरे कर यह फल भाई ।

भजिय राम सब काम बिहाई ।।

अब, जब साधक भजन करने लग जाय, तो फिर उसे कोई कामना नहीं करनी चाहिए। अगर इच्छाएं बनी रहेंगी, तो भक्ति का रस नहीं मिलेगा। इसलिए इच्छारहित होना चाहिए।

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।

भगवान का अनुरागी – साधक तो केवल इस प्रयास में रहता है कि उसे ऐसी युक्ति मिल जाय, जिससे भगवान की ओर रूचि बढ़ती जाय तो काम बन जाय–

चहौं न सुगति सुमति सम्पति कछु रिधि सिधि विपुल बड़ाई।

हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़ौ अनुदिन अधिकाई।।

और यह जो लिखा है कि इस रामायण को खूब बार–बार पढना चाहिए, तो यह तब तक करें, जब तक सही रास्ता पकड़ में न आ जाय। जब तरीका मिल जाय, तो उसको पकड़कर भजन में लग जाय–ऐसा नियम है। भजन से ही कल्याण होगा,

बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।

बिनु हरिभजन न भव तरिय यह सिद्धांत अपेल।।

इसलिए, भजन ही मुख्य है।

स्रुति सिद्धांत इहै उर गारी। राम भजिय सब काम बिसारी।।

जब साधना की जो प्रैक्टिकल बाते हैं, उन्हें जान गये, और फिर भी पढते ही रहें, करें न कुछ, तो यह गलत हो जायगा। यह तो जो निकलकर इस रास्ते से गया है, उसकी बातें इसमें लिखी हैं। अब हम यही कहते– सुनते रहें, कि वह ऐसे गया, ऐसे पहुंचा, तो क्या हम पहुंच जायेंगे? हमें तो उस रास्ते पर स्वयं चलकर पहुंचना होगा। इसलिए हम कहते हैं– पढ़ते रहने के बजाय करने में जुटो,भजन में लगन करो, तब परिणाम मिलेगा। भजन के बिना कुछ नहीं मिलेगा,–

राम भजन बिनु सुनहु खगेसा।

मिटै न जीवन केर कलेसा।।

,,,

बिनु हरिभजन न काम नसाहीं।

काम अछत सुख सपनेहु नाहीं।।

सही साधक जो होता है, वह बहुत बातों के बतंगड में, और समाज के पचड़े में नहीं पडता। वह तो अपने लक्ष्य को पाने के लिए पागल रहता है। उसमें वेग होता है। वह अपनी साधना में रैपिड प्रमोशन (तीव्र प्रगति) चाहता है। उसे अपने मिशन (धर्मव्रत) से फुरसत कहाँ है? और ये जो भगवान के अनेक रूप बता दिये जाते हैं, अनेक अवतार हैं, अनेक देवी देवता हैं, ये लोगों की भावना के आधार पर हैं। हजारों लाखों हैं। लोगो की रुचियां भिन्न होती हैं, इसलिए उनके अनेक रूप बन जाते हैं। भजन में लग जाने पर असली तथ्य की बातें पकड़ में आने लगती हैं। और जो लोग बाहर की बातें मान लेते हैं वे बाहर मूर्तियां बना बनाकर पूजा पाठ करने लग जाते हैं। इसमें अन्तर आ जाता है। सही रास्ता मानस की ओर,अपनी ओर लौटने में मिलेगा। साधना करनी पड़ेगी। अपने को खत्म करना पडता है, तब भगवान का रूप खड़ा होता है। इसके लिए लगन होनी चाहिए, अनुराग होना चाहिए, मन में ईश्वर के प्रति अनुराग पैदा हो जाय, प्रेम बढ़ता चला जाय तो अन्दर ही अन्दर सब होता जाता है। गोस्वामी जी ने अपने मानस की पहली चौपाई में लिखा है कि,

वंदउं गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।।

रुचि कहो चाहे लगन कहो, प्रेम कहो चाहे भक्ति कहो– उसे लाना पडेगा। ध्रुव, प्रहलाद, मीरा, सभी को इसी तरह से मिला है भगवान। उन्होंने जैसे पाया है, आज भी अगर कोई उनके पदचिन्हों पर चले, तो उसे भी मिल सकता है। लेकिन ज्यादातर लोग गलत तरीका पकड़ लेते हैं। अब कहते तो हैं कि–

राम ब्रह्म चिनमय अविनासी।
सर्वरहित सबउर पुरवासी।।

तो फिर राम जैसा जहां है, उसकी उपासना भी उसी रूप में वहीं हो, तब ठीक है। भटकाव न रहे। खूब जाँच परखकर सही, तरीका पकड़े। अपना ध्येय निश्चय कर, मन को ध्याता बना ले और तन्मय हो जाय – बस इतना ही तो खेल है। ऐसा नहीं कि कल कुछ विचार बनें, आज दूसरी बात सही लगने लगी। अगले दिन कोई और बात होगी। जिनकी भावना दृढ़ नहीं है उनका ऐसे ही होता है। और जो उत्तम कोटि के साधक हैं, उनका ध्येय छूटता नहीं, उनका निश्चय टूटता नहीं–

जनम जनम लगि रगर हमारी। बरउं शंभु नतु रहउं कुमारी।

ऐसे ही साधक गोल(लक्ष्य) तक पहुँचते हैं।

हमारे धर्मग्रंथ बताते हैं कि जब आततायी बढ़ जाते हैं, तो भगवान अवतार लेते हैं। मानस में आया है कि,

जब जब होय धरम कइ हानी।
बाढहिं असुर अधम अभिमानी।।

0 0 0

तब तब धरि प्रभु विविध शरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

इसी प्रकार से गीता में भी कहते हैं भगवान कि,

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लाविर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय, साधुनाम बिनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय, संभवामि युगे-युगे।

तो ये दैत्य बाहर नहीं हैं। यह तो हमारे अन्दर के दुर्गुण हैं। जब काम क्रोध, लोभ मोह ये सब अन्तःकरण में प्रबल हो जाते हैं, और साधक के अन्दर व्याकुलता जाग्रत होती है कि यही सब अशान्ति के कारण हैं। इन्हीं के कारण संसार में गोते खाना पड़ रहा है। तब वह गुहार लगाता है। अन्दर से भगवान के लिए व्याकुलता जाग जाय, तो भगवान के अवतार का सब विधान बन जाता है। इसलिए जो आदमी भगवान की ओर चलना चाहता है, उसे अपने अन्दर देखना पड़ेगा कि मेरे में तमाम बुराइयां भर गयी हैं। उनके कारण मै भगवान से विमुख हो गया हूँ। अपने धर्म से विमुख हो चुका हूँ। इन राक्षसों ने मेरे अन्दर की शान्ति को छीन लिया है। कैसे मेरी यह हालत सुधरे ऐसी ग्लानि हो। इस धड़-धरती में जब ऐसी व्याकुलता आये, तब फिर भगवान सुन लेते हैं। उपाय निकल आता है भगवान के आने का।

अतिसय देखि धरम कै ग्लानी।
परम सभीत धरा अकुलानी।।

अकुलाहट होनी चाहिए, ग्लानि होनी चाहिए, भगवान के लिए लगन पैदा होना चाहिए। तब फिर अन्दर ही अन्दर रास्ता मिल जाता है। और समाज में बाहर यह सब नहीं होता। हमेशा से इसमें उतार-चढाव आते रहे हैं, आते रहेगें। रामचरित मानस में दोनों बातें लिया है गोस्वामी जी ने। जो इसमें समाज की नीति-रीति दिखाई गयी है, यह सब लोकमत की बातें हैं। यह समाज के लिए है और जो लोग

पर्सनल साधना करके ईश्वर को पाना चाहते हैं, उनके लिए वेदमत है। वेदमत यह है कि राम और रावण तुम्हारे अन्तःकरण में ही हैं। अच्छाई का प्रतीक राम और बुराई का प्रतीक रावण। राम के द्वारा अपने अन्दर के रावण को समाप्त कर दो, तो फिर तुम अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्तकर सकते हो। यह तो वह काम है जो होने वाला है। और अगर कोई चाहे कि बाहर इस दुनिया से बुराई चली जाय, तो यह बात प्रकृति की नियमावली के विरुद्ध है। हर साल हिन्दुस्तान में कितने रावण जलाए जाते हैं। रामनवमी में राम का जन्म किया जाता है। लेकिन न अच्छाई आई, न बुराई गयी। दुनिया में ये दोनों सदा रहेंगी, क्योंकि अन्योन्याश्रित हैं। ऐसा हो नहीं सकता कि एक रहे एक चली जाय। दोनों रहेंगी। इसलिए यह साधना का विषय साधक का व्यक्तिगत विषय है। अपने में लेने का, और करने का विषय है।रामचरितमानस में प्रश्न उठाया गया है कि परमात्मा, जो पैदा होने और मरने वाली चीज़ है ही नहीं, वह कैसे दशरथ के पुत्र के रूप में पैदा हो गया? वह तो अज अविनाशी है। गोस्वामी जी के सामने यह प्रश्न जरूर रहा होगा। होना चाहिए। बिल्कुल स्वाभाविक प्रश्न है। इसलिए इसी प्रश्न को उठाया गया है कि,

बह्म जो ब्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद।

सोकि देह धरि होइ नर,जाहि न जानत वेद।।

शरीर तो जैसे पैदा होता है, वह प्रक्रिया स्त्री पुरुष के संयाग से होती है। सभी मनुष्य ऐसे ही पैदा होते हैं। ऐसे ही कृष्ण भी पैदा हुए, राम भी पैदा हुए। कौशल्या के गर्भ में रहे। लिखा है,

जा दिन ते हरि गरभहिं आए।

जन्म के लिए भी लिखा है–

जोग लगन ग्रह वारि तिथि, सकल भए अनुकूल।

चर अरु अचर हर्षजुत, राम जनम सुखमूल।।

राम का जन्म हुआ, लेकिन उसे भक्त लोग भगवान का प्रकट होना मानते हैं। भए प्रकट कृपाला, गाते हैं प्रेम से। एक तरह से यह अच्छी बात है कि इस प्रकार परमात्मा को लौकिक से अलग, अलौकिक मानते हैं। लेकिन खराबी तब घुस जाती है, जब हम अपनी समझ को इस मामले में क्लीयर (स्पष्ट) नहीं कर पाते हैं। और ईश्वर के संम्बंध में निश्चित धारणा नहीं बना पाते। इसलिए पंरपरावाद को अपना लेते हैं। रुढ़िवाद में चले जाते हैं।

इस तरह से बाहर तो गोस्वामी जी ने समाज की परंपरा को लिया है। हिन्दू समाज की परंपरा के अनुसार पूरा खांचा-ढांचा खड़ा किया है, लेकिन जो प्रश्न उठाया गया था वह स्वाभाविक था। और उसका मतलब यह निकलता है, कि कोई व्यक्ति भगवान को पाना चाहेगा, तो भगवान तो सदैव हर एक के अन्दर आत्मा के रूप में बैठा ही है। राम का यही वास्तविक रूप है। बाहरी रूप तो बनावटी है। मायामनुष्यंहरिम् - यह नर लीला के लिए है,नकली है। तो यह सब तो कवि की कला होती है। वह अपने पात्रों की सृष्टि करने वाला होता है। ये सारे कथानक और पात्र गोस्वामी जी के मानस की संरचना हैं। तो भाई,

राम बह्म चिनमय अविनासी।
सर्वरहित सब उरपुरवासी।।

यह राम का असली रूप है। सत्य सनातन आत्मा का स्वरूप है। उसी की उपासना-आराधना करनी है,

सत्यवस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत पसार।

उस परमात्मा के न जानने से ही संसार है। पाप और पुण्य,अच्छा और बुरा यह सब प्रपंच प्रतीत होता है। परमात्मा में यह कुछ है नहीं। यह सब माया क्षेत्र में है, और माया है ही नहीं। इसलिए यह सब है ही नहीं। तभी तक है, जब तक ईश्वर की जानकारी नहीं है। इसलिए,

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने।
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा
सपन भ्रम जाई।

इसलिए रामचरित मानस का यथार्थ बोध अपने मानस में इसे लेने से मिलेगा। इस ग्रंथ की उपयोगिता इसमें है कि इसे, लौकिकता से अलौकिकता में पहुचाने वाला माना जाय, और माना ही न जाय उसे आत्मसात किया जाय। आत्मकल्याण का रास्ता जो इसमें बताया गया है, उसे पकड़कर अपना कल्याण किया जाय। हर पढ़ने-सुनने वाले को ऐसा सोचना चाहिए, दृढ़ निश्चय करना चाहिए और भजन में लगना चाहिए। गोस्वामी जी कहते हैं-

जो नहाइ चह यहि सर भाई।
सो सतसंग करउ मन लाई।।

इसके लिए सतसंग ही एक रास्ता है। लेकिन ऐसा नहीं कि सतसंग के नाम पर रोज कथा,रोज मंदिर, रोज चरणामृत, रोज गंगा गोदावरी, और यही करते करते मर गये। कोई अपने अन्दर सुधार आया नहीं। सुनते रोज हैं लेकिन फिर वही धंधा, वही बुराई और वही विषय के काम। यह तरीका गलत है, इसे धर्म नहीं कहते। धर्म का मतलब है कि हमारी धारणा में ईश्वर आ जाय। ईश्वर की ओर हमारी प्रगति हो, तब ठीक है। सतसंग का मतलब है कि हम सत्य स्वरूप परमात्मा को हमेशा साथ लिए रहें, स्मरण करते रहें। सत्यसनातन आत्मतत्व में हमारी धारणा दृढ हो जाय,यह सनातन धर्म कहा जायगा।

धरम न दूसर सत्य समाना।

आगम निगम पुरान बखाना।।

इसलिए धर्म का मतलब है कि सत्यस्वरूप परमात्मा को अपने में धारण करें। तो वह तो कोई करता नहीं। उस पर भी हम बने हैं धर्मज्ञ। सारे संसार को रास्ता दिखा रहे हैं, खुद का ठिकाना नहीं है।

हरिः ओम